'जातवान' : भारतीय दलित साहित्य के परिप्रेक्ष में

बालकृष्ण जी. कानोलकर

भारतीय साहित्य के एक सुप्रसिद्ध अभ्यासक डॉ. निशिकांत ठकार ने बहुत सही कहा है कि, ''भारतीयतेंचा समकालीन, वर्तमान संदर्भ च महत्त्वाचा आहे।' कारण साहित्य समकालीन पर्यावरणात विकसित होत असते। भारतीयता ही केवळ पार्श्वभूमी नाहीं; भारतीयता ही एक सांस्कृतिक व्यवस्था आहे। साहित्याचा तिच्याशी जिवंत आणि जैविक संबंध आहे। (भारतीय साहित्याची संकल्पना; पृ. 988)

अर्थात्–

(भारतीयता का समकालीन, वर्तमान संदर्भ ही महत्त्व का है। क्योंकि साहित्य समकालीन पर्यावरण में विकसित होता है। भारतीयता केवल परिवेश नहीं; भारतीयता एक सांस्कृतिक व्यवस्था है। साहित्य का उससे जिंदा और जैविक संबंध है।)

समकालीन संदर्भ में भारतीयता यह एक बहुसांस्कृतिक, बहुमूल्यवादी, बहुविध मतमतांतर रखनेवाली, बहुभाषिक फिर भी भूमिप्रधान संकल्पना जो ठहरी।

बीसवीं शताब्दी के अस्सी के दशक में मराठी साहित्य जगत में जो सक्षम नौजवान कथा साहित्यकार उभर कर आए उनमें से राजन खान एक है। मराठी कथा जगत में उनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने कई कथाएं एवं उपन्यास और लघु उपन्यास लिखे हैं। उनका लघु उपन्यास 'जातवान' हमें भारतीयता के संकल्पना से बड़ी रोचकता के साथ परिचित कराता है। (जातवान; जानेवारी, 2003) यह एक ऐसी साहित्यकृति है कि जिसकी आलोचना भारतीय दलित साहित्य के परिप्रेक्ष में करना उचित होगा। आधुनिक काल में हिंदी भाषा में दलित साहित्य का निर्माण होने के पहले कई दशक पहले उसका निर्माण मराठी भाषा में हुआ। अतएव ये कहना उचित होगा कि इस साहित्य विभाग में साहित्य निर्माण का पहला सम्मान भारतीय भाषाओं में मराठी भाषा को ही प्राप्त होता है।

'जातवान' का कथ्य दलित परिवेश से संबंधित है। लेकिन उसकी प्रेरणा और आशय दलित साहित्य से कोसों दूर दिखाई देता है। दलितों का धर्मांतरण ही इसका विषय है। लेकिन इस समस्या की चर्चा मानवीय और चिरंतन मूल्यों की रोशनी में करने की चेष्टा रचयिता ने की है, और यही इस लघु उपन्यास का निरालापन है। राजन खान नाम से लगते तो हैं मुसलमान लेकिन वे तो ब्राह्मण जो ठहरे, इसलिए दलित साहित्य की जो निकष परंपरा है उस पर यह उपन्यास ठीक नहीं उतर सकता। लेकिन इससे बढ़कर इस विषय के परिप्रेक्ष में खान जी

ने समकालीन भारतीय समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक (Socio-Cultural), धार्मिक (Religious), आर्थिक (Economic) एवं राजनीतिक (Political) गतिविधियों के ऊपर जो नई रोशनी डालने का प्रयास किया गया है, वह पाठक को गहरी सोच में डुबो देता है और इस समस्या से जुड़े हुए कई सवालों के जवाब ढूंढ़ निकालने के लिए उसे मजबूर और परेशान करता है। जैसे : स्वातंत्र्यता के पचास साल बाद भी क्या भारत देश सचमुच आजाद हो गया? इस देश में रहने वाला हर एक आदमी सही मायने में आजाद है क्या? क्या सचमुच ही हर एक भारतीय नागरिक को, हर एक जाति और संप्रदाय को, हर एक धर्म और पंथ के लोगों को स्वातंत्र्य, समानता, बंधुभाव, सर्वधर्मसमभाव, लोकशाही विचारधारा और जीवनसरणी जैसे मानवीय उच्चतम मूल्य प्रदान किए गए हैं? वास्तव में कहां हैं वो मूल्य? वास्तव में इन मूल्यों का विकृत स्वरूप ही हमारा रोज का अनुभव रहा है। इस वास्तव को ही खान जी ने बहुत ही नुकीले शैली से उजागर किया है।

धेड़ समाज के एक इकाई का विषमताभरा अपना हिंदू धर्म त्यागकर इस्लाम धर्म को स्वीकार करना इस कहानी की मूल जड़ है। लेकिन धर्मांतर ही केवल इस समस्या का अंतिम इलाज नहीं है। क्योंकि धर्मांतर करने के बाद भी धेड़ नौजवान नए धर्म में समता का अनुभव नहीं करता बल्कि उधर भी उन्हें असमानता, ऊंच-नीच की भावना का, अमीर और गरीब आदि विषमता के विविध पायदान नजर आते हैं जिस पर उन्हें खड़ा किया जाता है। केवल धर्म बदलने से समाज में प्रचलित ये विषमताएं दूर नहीं हो सकतीं इस यथार्थ को लेखक ने अधोरेखित किया है। अपने इस लघु उपन्यास के जरिए से इसे सब बकवास करार देते हुए, आज का असल यथार्थ, धर्मांतर से जुड़ा हुआ सत्ता नाट्य बड़ी ताकत के साथ रोचक और व्यंगतापूर्ण शैली द्वारा चित्रित किया है। हिंदू और मुसलमान मूलतत्त्ववादी शक्तियों का भंडाफोड़ किया है। इस घटना का व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर जो बुरा असर हो सकता है उसका आलेखन खान जी ने कई प्रसंगचित्रण के जरिए समग्रता के साथ मार्मिकता से किया है। और इन सारी समस्याओं का हल धर्मांतर से हो नहीं सकता ऐसा संकेतित किया है।

'दलित' समस्या का यहां के हिंदू और मुसलमान मूलतत्त्ववादी, महंत और मौलवी, हिंदू और मुसलमान पार्टियां और राजनीतिज्ञ कैसा-कैसा राजनीतिक लाभ उठाते हैं इसका यथार्थ, आंखों देखा चित्रण इस उपन्यास का एक शक्तिस्थल कहा जा सकता है। 'दलित' समस्या जितनी प्रलंबित रहे उतनी उपरोक्त समाज घटकों के लिए उपकारक ही साबित होगी और उसका अधिक से अधिक फायदा उठाने का प्रयास हिंदू और मुसलमान राजनीतिज्ञ और धर्माध्यक्षों से निरंतर होता आया है। यदि इस समस्या का अंत हम चाहते हैं तो इस समस्या का हल हमें हिंदू और मुसलमान राजनीति के दायरे के बाहर रहकर ही ढूंढ़ निकालना होगा; ऐसा संदेशा लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से समस्त भारतवासियों को दिया है।

धर्म, अर्थ और राजदंड ये सत्ता के तीन प्रकार हैं। किसी भी समाज या राष्ट्र में ये सत्ता प्रकार उसके प्रारंभ काल से प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष उपस्थित रहते हैं। जब इस देश के दलित एक धर्म से दूसरे धर्म में प्रवेश करते हैं तब उन पर शासन करनेवाले तीन सत्ताओं में से वे केवल एक ही सत्ता से मुक्त होते हैं। बाकी के दो उन्हें वैसे ही पूर्ववत जकड़ लेते हैं। केवल एक धार्मिक सत्ता से वे छुटकारा पाते हैं, जरूर परंतु उसके साथ ही साथ दूसरे धर्म के सत्ता के दायरे में वे अपने आपको ढकेल देते हैं। उसका नतीजा क्या होगा? इस पर ठीक ढंग से विचार किया नहीं गया। और उसका नतीजा उन्हें इस नए धर्म में भी भुगतना पड़ता है। क्योंकि सबसे प्रबल अर्थ सत्ता के सोपान पर उच्च-नीच का अनुभव उन्हें इस नए धार्मिक समाज में भी भोगना पड़ता है।

रंग्या धेड़ का जवान बेटा और मौलाना अबुबकर की सयानी बेटी एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। उसका परिणाम पहले के मुसलमान नौजवान रंग्या धेड़ के बच्चे को मसजिद के सामने पकड़कर मारपीट करते हैं। इसके बारे में जब रंग्या बताता है कि मौलाना ऊंच जात वाला और वे नीच जातिवाले। सत्तार उन्हें समझाता है—"समरे सारखेच असत्यात, पर ते रोटी हेवारात। बेटी हेवार कसा सारखा असल बरं? परत्येक जागी खालचं वरचं आस्तंच की, बाकी समदीकउं समदे मुसलमान सारखेच। पर लभीनविगनि असत्या कामात खालचं वरचं येतंच की। खानदान, घराणं काय पासा नको का?" (पृ. 71-72) अर्थात् सब बराबर के होते हैं, पर रोटी के मामले में। बेटी के

मामले में सब बराबर कैसे हो सकते हैं? हर एक मामले में ऊंचा-नीचा तो रहता ही है। बाकी सब मामले में सभी मुसलमान बराबर के। परंतु शादी-ब्याह के मामले में ऊंच-नीच का ध्यान तो रखना पड़ता है। खानदान, घराना कुछ तो देखा ही जाता है न?"

सदियों से भारत की समाज रचना सामंतवादी जो ठहरी। आज भी वो वैसी की वैसी अबाधित दिखाई देती है। (इस देश में रहनेवाला मुसलमान समाज भी इस यथार्थ का अपवाद नहीं है।) नहीं तो क्या यह केवल हिंदू समाज की वतनदारी है। इसी के कारण जब नए-नए धर्मांतरित धेड़ रंग्या का जवान लड़का और मौलाना अबुबकर की सयानी बेटी का प्यार का मामला सामने आता है, और रंग्या के बच्चे को मस्जिद के सामने बेदम मारपीट जो होती है और उसकी तकरार लेकर रंग्या और अमलू सत्तार के पास जाते हैं और उससे पूछते हैं कि "आरं, आमी बी मुसलमान, तुमीबी मुसलमान; आन आपल्यातल्याच पोराला मारायचं म्हंजी काय खरंय का?" (पृ. 72) अर्थात् (जी, हम भी मुसलमान, तुम भी मुसलमान; ऐसा होते हुए भी अपने ही बच्चे को पीटना क्या सही बात है?)

इस हकीकत के बारे में बहुत-सी पूछाताछी होती है और जब अमलू और रंग्या सत्तार से पूछते हैं कि, 'मुसलमानांतबी जाती हाईत व्हय?" (पृ. 72) (क्या मुसलमान में भी जात है क्या?) उस पर सत्तार उन्हें समझाता है कि 'मंग तुमास्बी काय वाटलं? ऊंच नीच सारी कउंच हाय। सय्यदइेख येगळे, तांबोळीमन्यार येगळे। आन तुमी बाटगे मुसलमान येगळे! (पृ. 72) (तो तुम्हें क्या लगा? ऊंच-नीच सभी जगह पर है। मुसलमान में भी हैं। सैय्यद शेख अलश, तांबाळीमन्यार अलग। और तुम काफर मुसलमान अलग।" (बाटगे = काफर)

धेड़ समाज के इस धर्मांतर के कृत्य में सत्तार ने बिचोलिया की भूमिका निभा ली थी और उनको समानता के रंगीले सपने दिखाकर मुसलमान धर्म अपनाने के लिए प्रेरित किया था इस यथार्थ को इस संदर्भ में अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस घटना के कारण हिंदू धर्म के ऊंच-नीच व्यवस्था के विरोध में समता का पैगाम लानेवाले इस्लाम को स्वीकार करने वाले धेड़ लोगों का भ्रम निरास होता है।

Divide and Rule पॉलिसी के जरिए बहुजन समाज को जाति, पंथ, धर्म, प्रदेश, भाषा इत्यादि में अलग-अलग बांटकर ऊपरी जाति के लोग उन पर सत्ता चलाने की चाल कैसे चलते हैं, इसका भी भंडाफोड़ इस साहित्यकृति के जरिए खान जी ने बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से किया है। और इस यथार्थ को भी अधोरेखित किया है कि विभिन्न धर्म के बावजूद भी ऊंचे जाति के लोगों का धर्म कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता वरना धर्म की क्रॉक्रिट की दीवार वहां गोबर की जैसी बन जाती है। आचार्य और मिर्जा साहब की मुलाकात के जरिए लेखक ने ये कड़वा सच जनता के सामने रखा है। और दोनों धर्म के ये आचार्य 'दलित' और उनके धर्मांतर को लेकर कैसी-कैसी और किस हद तक की फायदेमंद की राजनीति करते रहते हैं। इसका विस्फोटक विवरण खान जी ने किया है। उदाहरण : आचार्य जी और मिर्जा साहब की मुलाकात और दोनों के बीच का संवाद—हां भई, ठीक कहा आपने, यहां हिंदू और मुसलमान भाईचारे से रहने लगे...." (पृ. 63) यह मिर्जा का कहना और आचार्य का उन्हें जवाब, "समझ गया। यानी आप अपनी कुर्सियों की बात कर रहे हैं।" (पृ. 63)

इस कहानी को मीनाक्षीपुरम के धर्मांतर प्रकरण (1983) का अर्थपूर्ण संदर्भ लेखक ने दे दिया है। उदा. "यह बात नहीं भाई साब, खुशी मुझको...." (पृ. 63) यह मिर्जा का कहना। दलित लेखक रामनाथ चव्हाण ने इस घटना को नाटक का रूप देकर मराठी रंगमंच पर मंचित किया था। जितना उस घटना ने संपूर्ण देश में धड़ल्ले से हल्लागुल्ला मचाया था उतना ही शोर इस नाट्यकृति ने मराठी रंगमंच पर मचाया था। लेकिन उस नाटक के अंत में ऐसा संदेश देने का प्रयास किया था कि यदि दलित जनों को अपने सभी तरह के नीचलेपन से, दलितत्व से ऊपर उठना है तो उसे इस्लाम धर्म का स्वीकार ही एकमात्र पर्याय है। क्योंकि इस्लाम के अनुयायी मुसलमानों की छेड़छाड़ करने का दुस्साहस हिंदू कर नहीं सकते। और यदि करने का प्रयास किया तो एकजुट होकर मुसलमान उन पर हल्ला बोल करेंगे और ऊंच नीच ऐसा भेद न करके सब लोगों का रक्षण करेंगे। नाटककार रामनाथ चव्हाण को इस समस्या का पूरा आभास नहीं हुआ था। उनकी सोच की गवाही हमें इस नाटक के जरिए मिलती है। लेकिन राजन खान की सोच सही दिशा में जा रही है। उन्होंने इससे उभरे बहुत सारे सवालों के जवाब सीधे तौर पर तो दिए नहीं

हैं लेकिन (Reading Between the lines) की कला से जो अवगत हैं उन्हें सारे जवाब इस उपन्यास में मिल ही जाते हैं। यही इस कृति की श्रेष्ठता और विशेषता है और कलाकार का बड़प्पन भी।

संपूर्ण उपन्यास में आए हुए नाम और स्थल प्रतिनिधि मात्र हैं। महारवाडा, पंचायतघर, पाटिल की हवेली, खंडोबाल, भग्न मंदिर और मस्जिद। पूरे उपन्यास में गलती से भी गांव या शहर के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है। रचना तंत्र की इस समझदारी ने भी इस उपन्यास के कथानक को भारतीयता का दर्जा प्रदान करने में मदद की है। कहने के लिए तो इस कथा का परिवेश (मराठी) महाराष्ट्र का है लेकिन अनुभव के धरातल पर यह ज्यादातर भारतीय ही रहा है।

लेखक की जो बात परिवेश पर लागू होती है वही चरित्र-चित्रण पर भी। उपन्यास के प्रमुख पात्र विविध सत्ताकेंद्र के अधिपति हैं या उसके दलाल जैसे कि पाटिल, आचार्य, गुरुजी, मिर्जा, सत्तार आदि।

'जातवान' उपन्यास की कर्मभूमि महाराष्ट्र भले ही हो लेकिन यह अपनी व्यापकता में संपूर्ण हिंदुस्तान को समेटे हुए है। जीवन यथार्थ, चिंतन, अनुभव के स्तर पर भी शत प्रतिशत भारतीय है। इसमें व्यक्ति और समाज की जीवन दशा की हकीकत व्यक्त हुई है। दरअसल एक श्रेष्ठ कलाकृति मानव जीवन की कहानी, उसके आत्मा की पुकार एवं मुक्ति की गाथा होती है। 'जातवान' उपन्यास इस कसौटी पर खरी उतरने वाली कृति है। राल्फ फाक्स का उपन्यास के विषय में यह कथन कि "वह मानव जीवन का गद्य है, ऐसी पहली कला है जो संपूर्ण मानव को लेकर उसे अभिव्यक्ति प्रदान करने की चेष्टा करती है"। 'जातवान' उपन्यास की औपन्यासिक कला को सिद्ध करता है।

संदर्भ

—मराठी दलित साहित्य
—मराठी मुस्लिम साहित्य
—'ललित' जाने, 2004
(मानाचे पान : 'जातवान' आणि 'विनंशन'—मीना वैशंपायन; पृ. 41-46)
—'भारतीयता आणि समकालीन मराठी साहित्य', डॉ. निशिकांत ठकार।
—भारतीय साहित्याची संकल्पना; सं. डॉ. द. दि. पुंडे/ पद्मजा घोरपडे।
—नया पथ (स्वाधीनता विशेषांक), वर्ष 11, अंक 24-25, जुलाई-सितंबर, 1997
—'आजादी के बाद हिंदी उपन्यास : यथार्थ के विविध आयाम', कुंवरपाल सिंह।
—'दलित साहित्य का आंदोलन और हिंदी क्षेत्र'; शिवकुमार मिश्र।
—'साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल'; मोहनदास नैमिशराय।
—Literature of Modern India: Krishna Kripalani